ईसाई परंपरा में ईश्वर का स्वरूप

डॉ. एम. डी. थॉमस

'ईश्वर' की परिकल्पना

ईश्वर इन्सान की अलौकिक परिकल्पना की उपज है। इन्सान ने अपनी बुद्धि के सहारे अपनी चारों ओर फैले हुए विशाल कायनात में, उसमें मौजूद जीवों में और खास तौर पर खुद में छिपी हुई दिव्य शक्ति की पहचान की। अदृश्य को दृश्य बनाने की ललक ने उसके भीतर आस्था को जन्म दिया। उस अद्भुत रहस्य की तलाश शुरू हुई, जो दिखायी-सुनायी नहीं देता हो। उस सत्ता के हल्के-फुलके एहसासों ने उसके बेशुमार रूपों को उज़ागर करके रख दिया। किसी ने उसे ज्ञान समझाकर दर्शन के सहारे उसे समझाने की कोशिश की। किसी ने उसे प्रेम समझाकर भक्ति के सहारे उसे अपनाने की राह पकड़ ली। किसी ने उसे करणीय समझाकर कर्म के सहारे उस तक पहुँचने का मार्ग बनाया। कोई उसे रहस्य समझाकर एहसास का सहारा लेकर रहस्य-साधना में लगा। कोई उसे विज्ञान समझाकर घोर अन्वेषण में भी लगा रहा। कौन सही, कौन गलत इस पसोपेश में नहीं पड़ते हुए यह कहना समीचीन होगा कि सब मार्गों ने उस दिव्य सत्ता के अलग-अलग रूपों को उद्घाटित करके मानवता को गरिमायुक्त, समृद्ध और सार्थक किया।

ईश्वर की अनेक 'धारणाएँ'

आगे चलकर अनेक महापुरुषों ने अपनी-अपनी साधना के बलबूते सृष्टिकर्ता की धारणाओं को प्रकट किया और विविध धार्मिक परंपराओं को प्रवर्तित किया। ईश्वर-संबंधी धारणाओं में पायी जानेवाली असीम विविधता को एक स्वाभाविक प्रक्रिया ही मानना उचित है। जहाँ एक ओर अद्वैतवाद है, वहाँ दूसरी ओर द्वैतवाद भी है। कोई ईश्वर को सक्रिय सत्ता के रूप में देखता है और कोई निष्क्रिय सत्ता के रूप में। कोई उसे पुरुष के रूप में समझाता है और कोई स्त्री के रूप में। कोई उसे पुरुष और स्त्री के संयुक्त रूप में और कोई उसे न पुरुष,न स्त्री के रूप में भी देखता है। किसी परंपरा में ईश्वर को स्वतंत्र सत्ता के रूप में माना गया है और किसी परंपरा में उसे रिश्तावाचक मानकर उससे जुड़ने का इंतज़ाम बना रखा है। असल में, ईश्वर की सत्ता इन सभी धारणाओं से परे है। कलाकार का कलात्मक करिश्मा समूची सृष्टि से ओझाल और परे रहने में है। फिर भी, उसे पाने की सभी कोशिशें अपनी-अपनी जगह सार्थक ह।

ईश्वर की विविध 'रिश्तात्मक' धारणाएँ

रिश्ता ही जीवन का केद्र है। रिश्ते के सहारे और ईश्वर से जुड़ने की तमन्ना की वजह से ईश्वर की बहुत खूबियों से रूबरू होना संभव हुआ। जिस प्रकार मानव सामाज में अनेक प्रकार के रिश्ते हैं, ठीक इसी प्रकार ईश्वर की रिश्तामूलक धारणाओं में अनेकता है। अपने व्यक्तित्व का सहज झुकाव और रोज़मर्रा की जिंदगी में घटित होनेवाले रिश्ते की प्रबलता ईश्वर के साथ बननेवाले रिश्ते का आधार बनता है। देश-काल के अनुसार भिन्न-भिन्न विचारधाराएँ धार्मिक परंपराओं की बुनियाद बनी। सामी (यहूदी, ईसाइ, इस्लामी, आदि) और कुछ भारतीय परंपराओं में ईश्वर का पुरुष-रूप है। सूफी और भारतीय परंपराओं में ईश्वर के स्त्री-रूप की प्रधानता है। गंगा मैय्या, महालक्ष्मी, दुर्गा, काली, सरस्वती, पार्वती, शक्ति, आदि ईश्वर-रूप दैवियाँ हैं। भारत की मुख्य धारा में स्त्री-पुरुष के संयुक्त रूप को ईश्वर-रूप माना गया है। शिव-शक्ति/पार्वती, लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधा-कृष्ण, आदि उसके उदाहरण हैं। सुदामा का ईश्वर कृष्ण में दोस्त-रूप है और बलराम का ईश्वर कृष्ण में भाई-रूप है। यशोदा-नंद और जानकी-वासुदेव का ईश्वर कृष्ण में और मरियम-यूसुप का ईश्वर ईसा में बालक और पुत्र-रूप है। ईसा के शिष्यों का ईश्वर ईसा में और कबीर का ईश्वर निर्गुण में गुरु-रूप है। भक्ति के संदर्भ में कबीर और बहुतेरे संतों का ईश्वर मुख्य रूप से पति-रूप है और जायसी का ईश्वर पद्मावती में प्रेयसी/पत्नी-रुप है। अपने शिष्यों के पैर धोनेवाले ईसा का ईश्वर सेवा-रूप है और 'खोई हुई

भेड़ की तलाश' के दृष्टांत से उभर रहे ईसा का ईश्वर कमज़ोर-लाचार-रूप इन्सान है। इस प्रव ार, ईश्वर की रिश्तामूलक धारणाएँ अनगिनत हैं और उसका रूप अपने-अपने देखने-समझाने के नज़रिये पर निर्भर भी रहता है।

ईसाई परंपरा में 'आस्थावादी' दृष्टिकोण

धार्मिक परंपराएँ आस्थावादी ही हो यह ज़रूरी नहीं है। माना जाता है कि जैन और बौद्ध परंपराएँ धार्मिक होकर भी आस्थावादी नहीं है। ईसाई परंपरा में ईश्वर की परिकल्पना आस्थावादी धरातल पर खड़ी हुई है। ईसाई मान्यता के अनुसार ईश्वर का अस्तित्व है। वही समूची सृष्टि का सृष्टिकर्ता भी है। वह स्वयंभू है और उसे किसी ने नहीं बनाया। वह सबके लिये ज़िम्मेदार है। वह अनादि और अनंत है। वह सर्वशक्तिवान है। वह सबदूर विद्यमान है। वह सबकुछ जानता है। ईश्वर ही सृष्टि और खास तौर पर मनुष्य के जीवन का स्रोत और मंजिल है। वह इन्सान के गुनाहों को माफ़ करता और उसका उद्धार करता है। ईसाई मान्यता के अनुसार ईश्वर ही अहम सत्ता है और सबकुछ उसमें अस्तिव रखता है। उसके बिना जिंदगी निरर्थक है। ईश्वर में आस्था रखे बिना मनुष्य का जीवन मुमकिन नहीं है। संक्षेप में, यही कहा जा सकता है कि ईश्वर में आस्था ही इन्सानी ज़िंदगी का चरम लक्ष्य और उसकी सार्थकता है। यह ईसाई दृष्टिकोण की बुनियाद है।

ईसाई परंपरा में ईश्वर की 'रिश्तात्मक धारणा'

ईसाई परंपरा अपनी सामुदायिक भावना के लिये जानी जाती है। ईसाई ईश्वर-धारणा का मर्म 'रिश्ता' है। रिश्ते के इर्द-गिर्द जिंदगी की परिकल्पनाएँ बनी हुई हैं। रिश्ते का भाव सामाजिक स्वभाव से उभरता है। सामाजिकता हर प्राणी में रहती है। मनुष्य में यह अपने बुलंदतम रूप में पाया जाता है। रिश्ता सामाजिक जीवन का ताना-बाना है। इस ताने-बाने की बुनियाद यह चेतना है कि सब में एक ही खुदा का दिया हुआ प्राण है। प्राण का स्रोत सबके लिये एक है। ईसाई समुदाय की सामुदायिक सोच इसी समझा पर आधारित है। रिश्ते की दो दिशाएँ होती हैं - एक, खुदा की ओर और दूसरा, सह-प्राणियों की ओर। रिश्ते के भिन्न-भिन्न पहलू है। मनुष्य और जीव-जंतुओं के दरमियान भी रिश्ते है। इन्सान और इन्सान के बीच रिश्ते का भाव अपने चरम रूप में है। इन्सानी रिश्ते के रूप व्यक्ति-व्यक्ति के बीच, परिवार के सदस्यों में और विविध प्रकार के समुदायों के बीच में पाये जाते हैं। रिश्ते को बनाये रखने में समाज में तालमेल बना रहता है। रिश्ते को कायम रखने से सामाजिक जीवन में संतुलन बना रहता है। रिश्ते में ही सृष्टि का और खास तौर पर इन्सानी जिंदगी की सार्थकता है। रिश्ते को ज़रिया मानकर ईश्वर से जुड़ने की कोशिश ईसाई ईश्वर-धारणा की रीढ़ है और इसी विचाधारा ने मानव समाज के सम्मिलित जीवन को एक नया अर्थ दिया है, ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नज़र नहीं आती है।

ईश्वर का 'पिता'-रूप

ईसाई दर्शन ईश्वर को 'पिता' के रूप में पेश करता है। 'पिता' शब्द पुरुषवाचक होकर भी सिर्फ पुरुष से मतलब नहीं रखता है। यह स्त्री-भाव को भी अपने म शरीक करता है। इस लिये, इस शब्द में पिता और माता दोनो के गुण सम्मिलित है। 'पिता' शब्द सृष्टिकर्ता या जान देनेवाले की ओर इशारा करता है। यह ईसाई आस्थावाद का मूर्त रूप है। यह धारणा अन्य परंपराओं में भी कुछ हद तक देखी जा सकती है। लेकिन, ईसाई परंपरा में यह एक समग्र और सर्वसमावेशक दृष्टिकोण है। यह सबसे व्यापक रिश्ते को स्पष्ट रूप देता है और सारे अन्य रिश्तों को भी अपने में समेट लेता है। यह एक विशाल छतरी के समान है जिसके नीचे सब मनुष्य ही नहीं समूचे कायनात भी इक्कट्ठे हो सकते हैं। इसका मतलब यह भी है कि इन्सान ईश्वर से आत्मीयता से जुड़ सकता है और उससे व्यक्तिगत संबंध स्थापित कर सकता है।

ईश्वर 'ईसा मसीह के निजी पिता'-रूप

ईश्वर को पिता समझाने के ईसाई नज़रिये का आधार ईसा मसीह का अपना अनुभव है। ईसा ने ईश्वर को अपने निजी पिता के रूप में अनुभव किया था। अपने जीवन की शुरूआत से लेकर आखिरी तक वे अपने स्वर्गिक पिता से अंतरंग तरीके से जुड़े हुए

थे। वे ईश्वर को इब्रानी भाषा में 'अब्बा', याने 'प्यारे पिता' कहकर पुकारते थे (गलाती 3.7,पृ.सं.291)। उनको पिता की वाणी सुनाई दी कि 'यह मेरा प्रिय पुत्र है। मैं इस पर अत्यंत प्रसन्न हूँ (मत्ती 3.17, पृ.सं.4, 17.5.,पृ.सं.29)। यहूदियों ने ईसा के विषय में कहा था कि 'ईसा ईश्वर को अपने निजी पिता कहकर ईश्वर के बराबर होने का दावा करते थे' (योहन 5.18, पृ.सं.151)। ईश्वर से अपने रिश्ते को ईसा ने उपमा में कहा कि 'मैं सच्ची दाखलता हूँ और मेरे पिता बागवान है' (योहन 15.1, पृ.सं.171)। उनका एहसास था कि 'मेरे पिता काम कर रहा है और मैं भी काम कर रहा हूँ' (योहन 5.17, पृ.सं.151)। ईसा ने अपने परम पिता से प्रार्थना करते हुए कहा था कि 'तू ने जिन्हें मुझो सौंपा है, उन्हें अपने नाम के सामर्थ्य से सुरक्षित रख, जिससे वे हमारी ही तरह एक बने रहें' (योहन 17.11, पृ.सं.174)। अपने जीवन की आखिरी घड़ी के नज़दीक पहुँचकर ईसा ने जो प्रार्थनाएँ की वे इस बात के चरम प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि ईश्वर उनके निजी पिता थे - 'पिता! यदि तू ऐसा चाहे, तो यह प्याला मुझा से हटा ले। फिर भी मेरो नहीं, बल्कि तेरी इच्छा पूरी हो' (लूकस 22.42, पृ.सं.136), 'पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं' (लूकस 23.34, पृ.सं. 139) और 'पिता! मैं अपनी आत्मा को तेरे हाथों सौंपता हूँ' (लूकस 23.46, पृ.सं.139)। पिता ईश्वर से अपनी नज़्दीकी, एकता और अपनापन का इज़हार करनेवालो उपर्युक्त बातें इस बात की ओर इशारा करता है कि पिता ईश्वर ईसा के निजी पिता थे।

'ईसा मसीह' में ईश्वर का रूप

ईसा मसीह के विषय में बाइबिल के सुसमाचार-लेखकों में से एक योहन ने लिखा है कि 'आदि में शब्द था, शब्द ईश्वर के साथ था और शब्द ईश्वर था' (योहन 1.1-2,पृ.सं.143)। उन्होंने आगे लिखा है कि 'शब्द ने शरीर धारण कर हमारे बीच निवास किया' (योहन 1.14,पृ.सं.144) और 'किसी ने कभी ईश्वर को नहीं देखा; पिता की गोद में रहनेवाले एकलौते, ईश्वर, ने उसे प्रकट किया है'(योहन 1.18,पृ.सं.144)। इन बातों से ईसा के मूल व्यक्तित्व के साथ-साथ ईसा में विद्यमान ईश्वर-रूप भी उज़ागर होता है। अपने और पिता ईश्वर के मध्य ईश्वर-रूप की समरसता और अभिन्नता को दर्शाते हुए ईसा ने थॉमस से कहा था कि 'जिसने मुझो देखा है, उसने पिता को भी देखा है' (योहन 14.9, पृ.सं.170) और 'मैं और पिता एक हैं' (योहन 10.30,पृ.सं.163)। ईश्वर के बारे में उनके ज्ञान की अतरंगता को उद्घाटित करते हुए ईसा ने कहा था कि 'मेरे पिता ने मुझा सब कुछ सौंपा है। पिता को छोड़कर यह कोई भी नहीं जानता कि पुत्र कौन है और पुत्र को छोड़कर यह कोई भी नहीं जानता कि पिता कौन है' (लूकस 10.22,पृ.सं. 110-111)। ये बातें उनके गहन विश्वास पर आधारित थीं कि 'मैं पिता में हूं और पिता मुझा में है' (योहन 14.11, पृ.सं.170)। पिता ईश्वर से प्रार्थना में उन्होंने आगे कहा था कि 'जो कुछ मेरा है, वह तेरा है और जो तेरा, वह मेरा है' (योहन 17.10, पृ.सं.174), 'पुत्र स्वयं अपने से कुछ नहीं कर सकता। वह केवल वही कर सकता है, जो पिता को करते देखता है। जो कुछ पिता करता है, वही पुत्र भी करता है (योहन 5.19, पृ.सं.151) और 'मैं जो शिक्षा देता हूँ, वह मेरी अपनी शिक्षा नहीं है' (योहन 14.10, पृ.सं.170)। ये बातें ईसा में मौजूद पुत्रवत ईश्वर-रूप पर रौशनी फेरती हैं।

ईश्वर का 'सार्वजनिक पिता'-रूप

ईसा ने 'पिता' शब्द को अपनी निजी विरासत के रूप में नहीं समझा। उन्होंने उसे व्यापक करके सब मनुष्यों पर लागू किया। अपने शिष्यों की ओर इशारा करते हुए उन्होंने अनेक बार ईश्वर के लिये 'तुम्हारा पिता' शब्द का प्रयोग किया (मत्ती 6.4,6,8,18,26,32, पृ.सं.10; मत्ती 10.29, पृ.सं.16)। 'तुम्हारे पिता' का मतलब महज ईसा के शिष्य न होकर सब इन्सान हैं। इसका मतलब यह हुआ कि ईश्वर ईसाइयों के ही नहीं, बल्कि सभी धार्मिक परंपराओं और गैर-धार्मिक विचारधाराओं के लोगों के भी पिता है। पुरुष और स्त्री दोनो उसकी संतान हैं। पिता ईश्वर की छत्रछाया में भले-बुरे और धर्मी-अधर्मी का पर्क नहीं है। इसमें सामान्य तौर पर सभी जीव और समूची सृष्टि भी शामिल है। 'पिता' श्ब्द ईश्वर के लिये सार्वजनिक और सार्वभौम भाषा है। ईश्वर के लिये 'पिता' शब्द का प्रयोग भाषा, संस्कृति, विचारधारा, आदि की दीवारों के निरपेक्ष है। यह सारी सृष्टि को एक पारिवारिक भावना में बाँधनेवाली वास्तविकता है। ईश्वर की इस सर्वाधिक व्यापक धारणा को अपनाने का अर्थ है सबके साथ बराबरी का भाव रखना। इस धारणा का सामाजिक आशय बहु-आयामी है और अमऊची वास्तविकता को एक सूत्र में बाँधने में भी सक्षम है।

ईश्वर का 'पुत्रसुलभ' रूप

'ईश्वर अपना पिता है' यह बात तब मालूम होता है जब इन्सान खुद को ईश्वर के पुत्र या पुत्री के रूप में अनुभव करता है। ईश्वर के प्रति 'पुत्र या पुत्री-भाव' को अपनाना ईश्वर की भीतरी जगत में पहुँचने का सीधा मार्ग है। पिता के अंतरंग में दाखिला होना आज़ादी की निशानी है। पुराने विधान में या यहूदी समुदाय में लोग अपने आप को ईश्वर के गुलाम या सेवक के रूप में समझाते थे। गुलाम या सेवक मालिक का बंदा होता है। वह आज़ाद नहीं है। पुत्र या पुत्री आज़ाद है, क्योंकि वह घर में रहता या रहती है। पिता की विरासत में वह भागीदार है। ईसा ने उसे मित्र के समान बराबरी के दर्ज़े का हक़दार कहा है (योहन 15.15, पृ.सं. 172)। पौलुस, बाइबिल के नये विधान के लेखकों में से एक, का कहना है कि 'ईश्वर ने हमारे हृदयों में अपने पुत्र की आत्मा भेजी है, जो पुकार कर कहती है 'अब्बा! पिता!'। इसलिये अब आप दास नहीं, पुत्र है और पुत्र होने के नाते आप ईश्वर की कृपा से विरासत के अधिकारी भी है' (गलाती 4.6-7, पृ.सं.291)। ईसाइ आध्यात्मिकता को 'पत्र-भाव' की आध्यात्मिकता कहना पूर्ण रूप से उचित है। ईश्वर के पिता-भाव का जवाब यह पुत्र-भाव ही है। ईश्वर को समझाने का ईसाई तरीका बस यही है। खुदा सम्चो इन्सानी समदाय के लिए पिता-जैसे है। इसलिए हर इन्सान को उसके साथ बटा-जैसा रिश्ता जोड़ना चाहिए। ऐसा 'पुत्रसुलभ अनुभव किसी भी प्रकार की दीवार से खण्डित नहीं हो सकता। यह सबके लिये खुला है। बस, ज़रूरत इस बात की है कि छोटे बच्चों का-सा खुलापन, भरोसा, सादगी और प्रम-भाव हो, जो कि ईश्वर से मिलने के लिए बहुत ही जरूरी है।

ईश्वर का 'त्रयात्मक' रूप

ईश्वर का त्रयात्मक रूप ईसाई परंपरा की मुख्य धारा में है। 'तीन में एक और एक में तीन' ईश्वर-धारणा का ईसाई गणित है। ईसाई मान्यता है कि ईश्वर में 'पिता, पुत्र और आत्मा' के रूप में तीन व्यक्ति हैं और तीनों के त्रय में ही ईश्वर का रूप पूरा होता है। ईसा ने अपनी शिक्षा में पिता के बारे में खूब कहा ही है, यह हम देख चुके है। उन्होंने पिता के विषय में जो कुछ कहा है वह अपने बारे में भी सार्थक है। इसके अलावा उन्होंने यह भी कहा कि 'मार्ग, सत्य और जीवन मैं हूँ। मुझासे होकर गये बिना कोई पिता के पास नहीं आ सकता' (योहन 14.6,पृ.सं.170)। उन्होंने आत्मा के विषय में यह केहा कि 'जब वह सहायक, पिता के यहाँ से आनेवाला वह सत्य की आत्मा, आयेगी, जिसे मैं पिता के यहाँ से तुम लोगों के पास भेजूँगा, वह मेरे विषय में साक्ष्य देगी' (योहन 15.26,पृ.सं.172)। त्रियेक ईश्वर की परिकल्पना का निहितार्थ यह भी हो सकता है कि जैसे मनुष्य और सृष्टि के सभी तत्व बहुवचन में हैं, ठीक वैसे ही ईश्वर भी बहु-आयामी है। यह सोच आपसी लेन-देन, प्रेम, सरोकार, सहभागिता और एकरसता की सर्वोत्तम मिसाल ह। सामुदायिक सोच की यही आधार है। व्यक्तिगत आज़ादी और लोकतंत्र की बुनियाद भी बस यही है। यह धारणा पूरी तरह से रिश्तामूलक और आध्यात्मिक है। भारतीय संस्कृति का नारा 'विविधता में एकता' ईसाई ईश्वर-धारणा की मुख्य धारा में पायी जाती है। ईश्वर की त्रयात्मक रूप समस्त धार्मिक तथा सामाजिक विचारधाराओं में तालमेल, समरसता और एकता स्थापित करने के लिये प्रेरणादायक साबित होगा, यह निश्चित है। यह धारणा 'विविधता में एकता', जो कि खास तौर पर भारतीय संस्कृति की पहचान है, का आध्यात्मिक रूप है, ऐसा कहा जा सकता है।

'इन्सान' ईश्वर का 'प्रतिरूप'

ईसाई परंपरा की बुनियादी मान्यता है 'ईश्वर ने इन्सान को अपना प्रतिरूप बनाया है' (उत्पत्ति 1.27, पृ.सं.5)। मनुष्य 'ईश्वर के सदृश' है (उत्पत्ति 1.26, पृ.सं.5)। यह बात उपनिषद की अद्वैतवाचक 'अहम ब्रह्मास्मि' और रहस्यदर्शी कबीर की 'जित देखूँ, तित तूं' से बेहद मिलती-जुलती है। 'ईश्वर का प्रतिरूप' पुरष ही नहीं, बराबर की मात्रा में स्त्री भी है। यह बात भी बाइबिल द्वारा परिपुष्ट है - 'उसने नर और नारी के रूप में उनकी सृष्टि की' और 'मैं उसके लिये (पुरुष) एक उपयुक्त सहयोगो बनाऊँगा' (उत्पत्ति 1.27,पृ.सं.5; उत्पत्ति 2.18,पृ.सं.6)। लिंग को लेकर फर्क करने का कोई आधार ईसाई परंपरा में कतई नहीं है। इन्सान की, दूसरे जीवों की भी, द्विलिंगी रूप और उन दोनों रूपों की सहकारिता में 'ईश्वर की सदृशता' सृष्टिकर्ता की योजना है। साथ ही, खुदा की सदृशता और प्रतिरूप महज ईसाइयों में न होकर सभी समुदायों के लोगों में प्रतिफलित है। जाति, प्रजाति, बिरादरी, भाषा, पेशा, विचारधारा, मजहब, रीति-रिवाज़, सस्कृति, आदि की चहारदीवारियों में ईश्वर का रूप सीमित नहीं होता। सामान्य रूप में जीव-जंतुओं तथा प्रकृति में भी ईश्वर का रूप प्रतिबिंबित है, यह भी ज़ाहिर बात है।

'इन्सान' ईश्वर का 'मंदिर'

'इन्सान ईश्वर के रूप और उसकी सदृशता में बनाया गया है' इस दर्शन की बुनियाद पर 'इन्सान ईश्वर का मंदिर है' इस बात की भित्ति बनायी हुई है। ईसाई विचारधारा के मुख्य व्याख्याता पौलुस का सवाल बेहद विचारोत्तेजक है - 'क्या आप यह नहीं जानते कि आप ईश्वर के मंदिर हैं और ईश्वर की आत्मा आप में निवास करतो है? यदि कोई ईश्वर का मंदिर नष्ट करेगा, तो ईश्वर उसे नष्ट करेगा; क्योंकि ईश्वर का मंदिर पवित्र है और वह मंदिर आप लोग हैं' (1 कुरिंथी 3.16-17.पृ.सं.255)। उन्होने आगे कहा कि 'हम ईश्वर के जीवंत मंदिर हैं' (2 कुरिंथो 6.16, पृ.सं.279)। इन्सान को सिर्फ व्यक्ति के रूप में ईश्वर का मंदिर समझा नहीं गया है। इन्सान का समुदाय भी ईश्वर का मंदिर है। तर्क यह है कि खुदा का कहना है कि 'मैं उनके बीच निवास करूँगा और उनके साथ चलूँगा' (2 कुरिंथी 6.16, पृ.सं.279)। व्यक्ति और समुदाय के रूप में इन्सान ईश्वर का मंदिर है, यह बात पुरुष और स्त्री दोनों पर एक-जैसा लागू होता है। स्त्री और पुरुष के बीच बराबरी का भाव ही खुदा के मंदिर को जीवंत बनाने में आवस्यक मानसिकता है। और तो और, यह बात सिर्फ ईसाइयों के लिये न होकर समूची मानव जाति के लिये है। ईश्वर की छाया सब मनुष्यों में प्रतिफलित है। भले-बुरे, आस्थावादी या नास्तिक, पूर्वी या पश्चिमी, आदि सभी मनुष्य विशिष्ट रूप से और सारी सृष्टि के जीव ईश्वर के चलते-फिरते मंदिर हैं।

'इन्सान' में ईश्वर का रूप

ईश्वर को पिता मानने का सीधा अर्थ इन्सान में ईश्वर का रूप देखना है। इन्सान के रिश्ते की दो दिशाएँ होती हैं - ईश्वर की ओर और इन्सान की ओर, एक लंबवत और दूसरा समांतर। ये दोनो दिशाएँ आपस में पूरक हैं और दोनो मिलकर ईश्वर के स्वरूप का पूरा नक्शा तैयार करती हैं। पहला, सैद्धांतिक है और दूसरा व्यावहारिक। ईश्वर को पिता मानने का मतलब हुआ 'सभी इन्सानों को ईश्वर के बेटे या बेटियाँ मानना' तथा 'उन्हें अपना भाई या अपनी बहन मानना'। यह सामाजिक जीवन का अध्यात्मिक नज़रिया है। ऐसे नज़रिये से आपसी भाईचारा और सरोकार का भाव बनता है। दोस्त और दुश्मन के बीच और तथाकथित अच्छे और बुरे के बीच फ़र्क नहीं करने से और आपस में बराबरी का भाव रखने से इन्सान में परम पिता ईश्वर का रूप झालकता है। पिता ईश्वर पूर्ण है और पूर्णता ईश्वर का गुण है। हर प्रकार के दीवारों से ऊँपर उठकर सब लोगों से सद्भावपूर्ण बरताव करने पर ईश्वर की पूर्णता में शरीक होने की उपलब्धि हासिल होती है। (मत्ती 5.43-48, पृ.सं. 8)। यह मानसिकता रिश्ते का भाव है। यह प्रेम की संस्कृति है। ऐसी नसीहत देकर ईसा ने इन्सान के रूप में इस दुनिया मे ईश्वर के जीवंत वजूद को रेखाँकित किया। ईश्वर-धारणा में यह एक अनूठी और क्रांतिपूर्ण शैली है। ईसा के अनुयायी होने का सही मतलब भी यहाँ साफ होता है। ऐसे सार्वभौम और सार्वजनिक संस्कृति में ईश्वर के स्वरूप को उद्घाटित करके ईसा ने मानव जीवन के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त किया। कैथॅलिक ईसाई समुदाय के पूर्व प्रमुख पापा योहन पौलुस द्वितीय ने इस सच्चाई को अपने शब्दों में निचौड़ा और कहा कि 'संवाद के ज़रिये हम ईश्वर को अपने बीच उपस्थित होने देते हैं, क्योंकि जब हम आपसी संवाद में एक दूसरे के लिये खुल जात हैं, तभी हम ईश्वर के लिए भी खुलते हैं'। इसका अर्थ यह हुआ वि इन्सानों के दरमियान आपसी संवाद, समरसता और सरोकार की प्रक्रिया में ईश्वर का रूप झालकता है।

'पड़ोसी' में ईश्वर का रूप

एक इन्सान दूसरे इन्सान के लिये 'पड़ोसी' के सामान है। इस लिये ईसा ने कहा था 'तुम अपने पड़ोसी से प्यार करो' (मत्ती 5.43, पृ. सं. 5)। पड़ोसी का मतलब सिर्फ़ उस व्यक्ति से नहीं है जो अपने अड़ोस-पड़ोस में रहता हो। हर इन्सान दूसरे के लिये पड़ोसी साबित होता है। साथ ही, पड़ोसी वह है जो किसी भी मामले में जरूरतमंद हो। यहाँ 'पड़ोसी' शब्द से अभिपाय समूचे समाज से है। जाति, प्रजाति, भाषा, संस्कृति, मज़हब, आस्था, विचारधारा, रीति-रिवाज़, खान-पान, वेशभूषा, नागरिकता, आदि का फ़र्क 'पड़ोसी' शब्द पर लागू नहीं है। दूसरे इन्सान को पड़ोसी समझाकर उससे प्रेम करना उसके साथ रिश्ता जोड़ने का तरीका है। हर इन्सान एक-दूसरे के लिये पड़ोसी है। पड़ोसी में ईश्वर मौजूद है। पडोसियों की आपसी पूरकता में ईश्वर का सामाजिक रूप छिपा हुआ है। एक दूसरे से मुलाकात, बातचीत, विचारों का आदान-प्रदान, आपसी लेन-देन, सहयोग, हमदर्दी, आदि में रिश्ता सक्रिय होता है और उस सक्रियता में ईश्वर का रूप बुलंद होता है। एक दूसरे का सम्मान करे, एक दूसरे को

अपनाये, एक दूसरे का अगीकार करे, एक दूसरे के साथ ज़िदगी की खुशी और गम बाँटे, एक दूसरे की तारीफ़ करे, एक दूसरे के लिये मौजूद रहे, एक दूसरे की जिंदगी के अनुभवों में हिस्सा ल, एक दूसरे की विभिन्न हकीकतों को साझा करे और एक दूसरे का साथ दे, बस ईश्वर का रूप ऐसा ही प्रतिफलित होता है। असल मे, ईसा ने भले समारी का दृष्टांत प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया कि पड़ोसी वह व्यक्ति है जो इस समय ज़रूरतमंद हो और उसकी प्यार-भरी सेवा में इन्सान ईश्वर के असली स्वरूप से रूबरू हो जाता है। (लूकस 10.29-37, पृ.सं.111)।

'भाई-बहनों' में ईश्वर का रूप

बाइबिल के पुराने विधान में काईन और हाबिल की कहानो में एक सवाल है जो कि मानव जीवन में बुनियादी है - 'क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ?' (उत्पत्ति 4.9, पृ.सं.8)। एक तो, काईन ने अपने भाई हाबिल की हत्या करने के बाद अपनी ज़िम्मेदारी से हाथ धोने के लिये यह उलटा सवाल किया था। नये विधान में ईसा की माता मरियम ने इस सवाल का सकारात्मक जवाब व्यवहार में दिया। काना की शादी-ब्याह में परोसी जा रही अंगूरी हत्म होने पर उन्होंने मेज़बान को अपने भाई समझाकर अपने बेटे ईसा से गुज़ारिश कर चामत्कारिक ढंग से अंगूरी का प्रबंध किया और इस प्रकार उस मेजबान की लाज रखी (योहन 2.1-11, पृ.सं.146)। ईश्वर को पिता समझाने का मतलब यह है कि हर कोई दूसरे को अपना भाई या बहन माने और खुद को दूसरों का भाई या बहन माने। उसका ख्याल करना, खास तौर पर, उसकी जरूरत की घड़ी में काम आना, भाई या बहन-सा व्यवहार है। खून के रिश्ते से यहाँ कोई मतलब नहीं है। यह एक ऐसा रूख है जो सब मनुष्यों पर लागू होती है। भाई-बहन-सी मानसिकता में ईश्वर का एक विशिश्ट रूप उभरकर सामने आता है। इस लिये ईसा ने बहुत ही सटीक शब्दों में कहा था 'तुम ने इन भाइयों में से किसी एक के लिये, वह चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, जो कुछ किया, वह तुम ने मेरे लिये ही किया' (मत्ती 25.40, पृ.सं.46)। सह-इन्सानों में भाई या बहन को देखकर उनकी सेवा किये बगैर खुदा के दर्शन नहीं हो हो सकते।

'दोस्तों और साथियों' में ईश्वर का रूप

इन्सान दूसरों को किस नज़रिये से देखता है ठीक इस आधार पर उसे ईश्वर का रूप नज़र आयेगा। दूसरों को दोस्त और साथी समझाना ईश्वर के रूप को समझाने का एक खास तरीका है। ईसा ने कहा, 'मैं तुम्हें सेवक नहीं कहूँगा। सेवक नहीं जानता कि उसका स्वामी क्या करनेवाला है। मैं ने तुम्हें मित्र कहा है, क्योंकि मैं ने अपने पिता से जो कुछ सुना, वह सब तुम्हें बता दिया है (योहन 15.15.पृ.सं.172)। दोस्ताना भाव एक को दूसरे की भीतरी दुनिया में दाखिला दिलाता है। साथी सहचर है, साथ चलनेवाला है। दूसरे का भरोसा और उसकी आत्मीयता उसकी पूँजी है। बराबरी का भाव दोस्तों और साथियों में खास है। उनमें सालोक्य और सारूप्य हं। उनके आपस में गहरा रिश्ता है। एक दूसरे के लिये ईमानदारी और वपादारी उनकी पहचान हैं। इस लिये एक दूसरे के लिये अपनी जान देने को भी हिचकता नहीं है। इसलिये ईसा ने आगे बढ़कर कहा था, 'इससे बड़ा प्रेम किसी का नहीं कि कोई अपने मित्रों के लिये अपने प्राण अर्पित कर दे' (योहन 15.13-14,पृ.सं.172)। जीवन यात्रा में हासिल होनेवाले दोस्त और साथी में ईश्वर का ही अतरंग रूप प्रतिफलित होता है। साथ ही, दोस्ताना भाव ईश्वर का ही रूप है।

'जरूरतमंदों और व मज़ोरों' में ईश्वर का रूप

प्रेम और दोस्ती की असलियत तब खुलती है जब दूसरे को अपनी मदद की ज़रूरत होती है। जो 'ज़रूरत की घड़ो में काम आये, वही हकीकत में दोस्त है। खाने का स्वाद तब मालूम पड़ता है जब भूख लगती है। नींद का सुख तब है जब नींद आती हो। खास मौके पर मिलनेवाली सेवा खास रूप में कीमती है। सेवा सब की होनी चाहिये। लेकिन, कमज़ोर तबके के लोगों की सेवा विशिश्ट है। तरजीही तौर पर उन लोगों की सेवा होनी चाहिये जो दबे हुए और हाशिये पर सरकाये हुए हं। आवाज़हीनों के लिये आवाज़ बनने, अंधों के लिए आँख बनने, बेपैरों के लिये पैर बनने और भूखों के लिये रोटी बनने में इन्सानियत की गरिमा है। यही खुदा की गरिमा भी। ईसा ने हमेशा ज़रूरतमंदों के प्रति तरजीही प्यार दिखाया। वह निचले जाति के समझो जानेवाले और पापी नाकेदार ज़केउस के घर जाकर ठहरे और उसके साथ खाना खाकर उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाया (लूकस 10.1-10,पृ.सं.128)। सुखी और बेरहम अमीर तथा कंगाल और दुखी लाज़रुस की कहानी में लाज़रुस को परम सुख के लायक

बताकर ईसा गरीब की पीठ थप-थपाया (लूकस 16.19-31,पृ.सं.124)। भटकी हुई भेड़, खोये हुए सिक्के और खोये हुए लड़के के दृष्टांत सुनाकर ईसा ने पिछलों की सेवा की खासियत की ओर ध्यान आकर्षित किया (लूकस 15.1-32,पृ.स.122-123)। 'नीरोगों को नहीं, रोगियों को वैद्य की ज़रूरत होती है। मैं धर्मियों को नहीं, पापियों को पश्चात्ताप के लिये बुलाने आया हूँ', यह उपर्युक्त तरजीह का आधारभूत तर्क था। अहम बात यह थी कि ईसा ने ज़रूरतमंदों में मौजूद ईश्वर के रूप को देखा और उन अभाहे इन्सानों को ईश्वर समझाकर उनकी वकालत और सेवा की। (लूकस 5.30-32,पृ.सं.98)। क्रूरतम बर्ताव पाकर भी ईसा ने अपने गुनहगारों को 'हे पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं' कहकर पापियों में भी मौजूद खुदा के रूप को तवज्जो दिया (लूकस 23.34,पृ.सं.139)। व्यभिचारिणी को माफ़ करना (योहन 8.1-11,पृ.सं.157-158), दुनिया की दृष्टि में दुर्बलों और नगण्यों को ऊँपर उठाना (कोरिंथी 1.26-29,पृ.सं.253), आदि भी तथाकथित छोटों में मौजूद खुदाई बड़प्पन को ही उजाहर करता है। हकीकत में, यह निछला तबका ईश्वर के रुप को तलाशने की सबसे खास जगह है।

'अन्य समुदायों' के लोगों में ईश्वर का रूप

ईसाई परंपरा के सामाजिक दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए बाइबिल के नये विधान के लेखक पौलुस ने 'एक ही शरीर के अनेक अंग' की मिसाल को पेश किया (1 कोरिंथी 12.12-28, पृ.सं.265-266)। समूचा समाज एक शरीर के समान है और सब समुदाय और व्यक्ति उसके अंग के समान भी। शरीर के सभी अंग सम्मान के लायक है। सब अंगों में बराबरी का भाव है। हर अंग की अपनी-अपनी भूमिका है। लेकिन, वे एक साथ वजूद रखते हैं। वे एक-दूसरे के पूरक हैं। वे आपस में अंतरंग तौर पर जुड़े हुए हैं। एक की जगह दूसरा नहीं ले सकता। ठीक इसी प्रकार हर व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से रिश्ता है। हर समुदाय का दूसरे समुदाय से रिश्ता है। कोई किसी के लिये पराये नहीं होना चाहिये। इन्में कोई बड़ा और कोई छोटा नहीं है। एक दूसरे से जुड़े रहे, इसी में हरेक की सार्थकता है। ईसा ने आपसी रिश्ते के लिये एक स्वर्णिम नियम दिया था - 'दूसरों से अपने प्रति जैसा व्यवहार चाहते हो, तुम भी उनके प्रति वैसा ही किया करो' (मत्ती 7.12.पृ.सं.10)। एक दूसरे के दरमियान फ़र्क करना ईसा को कतई मंजूर नहीं था। यह इसलिये है कि हर इन्सान में ईश्वर का रूप झालकता है। आपसी रिश्ते में ही ईश्वर का असली स्वरूप बुलंद होता है। ईसाई होने का सही मतलब है - सभी समुदायों के लोगों में बराबरी का भाव रखना और उनमें हरेक में खुदा का रूप देखना।

'प्रेम' में ईश्वर का रूप

ईश्वर के स्वरूप की चरम सीमा को उद्घाटित करते हुए ईसा ने नसोहत दी थी, 'मैं तुम लोगों को एक नयी आज्ञा देता हूँ - तुम एक दूसरे को प्यार करो। जिस प्रकार मैंने तुम लोगों को प्यार किया, उसी प्रकार तुम भी एक दूसरे को प्यार करो' (योहन 13.34,पृ.सं.169)। 'पड़ोसी से प्यार करो', 'दुश्मन से प्यार करो', 'जैसा व्यवहार तुम दूसरों से चाहते हो, वैसा व्यवहार तुम भी उंके साथ किया करो', आदि बातें भी इसी प्यार की नसीहत की दिशाएँ हैं। प्यार ही ईसा की शिक्षा व। केंद्र रहा है। इस लिये ईसाई धर्म को 'प्रेम का धर्म' कहा गया है। असल में, धर्म कोई भी हो, प्रेम को बढ़ावा देना ही उसका लक्ष्य है।प्रेम की यह शिक्षा किसी भी प्रकार की दीवारों से खण्डित नहीं हो सकती। प्रेम का मार्ग सबके लिये खुला ह। सभी मनुष्यों के लिये यही करणीय है। ईश्वर की रूप प्रेम में ही सबसे स्पष्ट रूप से प्रतिफलित है, क्योंकि 'ईश्वर प्रेम है'।

'सेवा' में ईश्वर का रूप

विनम्र सेवा की सर्वोत्तम मिसाल बनकर ईसा ने अपने शिष्यों के पैर धोकर इन्सान में विद्यमान ईश्वरीय स्वरूप को ही गरिमामय किया (योहन 13.14,पृ.सं.169)। आखिर, यह समझाना होगा कि 'जो इन्सान के लिये किया जाता है वही ईश्वर के लिये भी किया जाता है'। 'इन्सान की सेवा ही हकीकत में ईश्वर की पूजा' है। सामाजिक न्याय की भित्ति पर ही सांप्रदायिक सद्भाव की इमारत खड़ी हो सकती है। सामाजिक न्याय को कायम करने के लिये सामाजिक ज़िम्मेदारी की भावना बेहद ज़रूरी है। कोई अपने आप को दूसरे के लिये जवाबदार समझो, ज़िंदगी का सामाजिक पहलू इस बात में निहित है। जैन दर्शन का आदर्श 'जीओ और जीने दो' इस संदर्भ में बहुत सार्थक है। जीने का अधिकार हर व्यक्ति और समुदाय के लिये अहम् है। कोई इस अधिकार

का उल्लंघन न करे, यह न्याय की माँग है। एक इकाई दूसरी इकाई का अतिक्रमण न करे, यह भी इन्साफ़ का रवैया है। व्यक्ति-व्यक्ति और समुदाय-समुदाय के दरमियान एक 'शराफ़त की रेखा' होती है, जिसका कदर करना भी कायदा है। हर व्यक्ति और कौम खुद जीये और आगे बढ़े तथा औरों के भी जीने-बढ़ने के रास्ते में रोड़ा न लगाये, यही आपसी सद्भाव का मार्ग है। एक दूसरे पर हमला न करे और एक दूसरे को तकलीफ न दे, यह हरेक का पुनीत धर्म है, बुनियादी सेवा भी। उपर्युक्त आदर्श के साथ 'जीने की मदद करो' जैसा विशिष्ट पहलू भी जोड़ा जाय, वह भी, खास तौर पर, कमज़ोर तबके के लोगों के साथ, तो क्या कहने! यही सेवा का असली रूप है। सफल सेवा के लिये सामाजिक ज़िम्मेदारी का भाव चाहिये। सेवा में ईश्वर का व्यावहारिक और मूर्त रूप छिपा हुआ है।

'सार्वभौम मूल्यों' में ईश्वर का रूप

मूल्य वह आदर्श या व्यवहार है जिसे समाज की खुली स्वीकृति मिली हो। इस लिये मूल्य में व्यापक और सर्वग्राही होने का गुण विद्यमान है। उसमें पीढ़ियों से चली आ रही अनुभव की पूँजी मौजूद है। सारी धार्मिक परंपराओं, विचारधाराओं और संस्कृतियों में मानवोपयोगी मूल्य होते हैं। वे मूल्य सार्वभौम और सार्वजनिक तौर पर सब मनुष्यों और समुदायों पर न्यूनाधिक मात्रा में लागू होते हैं। वे मूल्य मानवीय मूल्य ही नहीं, आध्यात्मिक मूल्य भी हैं। इन्सान के व्यवहार को व्यवस्थित करने में और उसे दिशा देने में इन मूल्यों की अहम भूमिका है। वे नैतिक मूल्य हैं। उन मूल्यों में ईश्वर का रूप पाया जाता है। मूल्य शाश्वत और अमर हैं। नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य ईश्वर के ही रूप होते हैं। सभी धार्मिक परंपराओं, ग्रंथों, भाषाओं, विचार्धाराओं और संस्कृतियों में ईश्वर का रूप प्रतिफलित है। वे मानव समाज का आध्यात्मिक धरोहर है। वे सब खुदा के रूप को पहचानने का जायज ज़रिये हैं। विविध मूल्य-परंपराओं में ईश्वर के रूप को देखने के लिये 'हम की भावना' ज़रूरी है।

'इन्सानियत की गुणवत्ता' में ईश्वर का रूप

श्री नारायण गुरु ने धर्म की चरम प्रासंगिकता पर रोशनी डालते हुए कहा, 'मज़हब हो कोई भी, इन्सान भला सो भला'। मज़हब की भूमिका है कि वह इन्सान को नेक और बेहतर बनाये। इन्सानियत की गुणवत्ता बढ़ाने का काम न आये तो मजहब अप्रासंगिक साबित होती है। कोई धर्म को नहीं मानता है या फलाँ धर्म को मानता है, यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। 'गुणग्राही' होना खास बात है। मधुक्खी भाँति-भाँति के बहुत फूलों में जाकर रस चूसकर मकरंद को इक्कट्ठा करती है। उसके छत्ते में जो शहद भरा हुआ है उसकी गुणवत्ता और स्वाद का कोई मुकाबला नहीं है। मधुमक्खी के स्वभाव को अपनाना इन्सान के लिये हितकारी है। 'सर्व-गुणग्राहिता' से इन्सानियत की गुणवत्ता बनी रहती है। भले इन्सान में ईश्वर का रूप साप तौर पर प्रतिफलित होता है। 'बेहतर इन्सान' बनना, 'बेहतर देश' को बनाना और 'बेहतर समाज' का निर्माण करना रचयिता के लायक सृष्टि-कार्य है। इस बात को ईसा ने अपने स्वर्गिक पिता का हवाला देते हुए साफ शब्दों मं कहा कि 'तुम पूर्ण बनो, जैसा तुम्हारा स्वर्गिक पिता पूर्ण है' (मत्ती 5.48,पृ.सं.8)। पूर्णता की चाह और कोशिश ही इन्सानियत की गुणवत्ता तक पहुँचानेवाली राह है।

'सामजिक समन्वय' में ईश्वर का रूप

सामाजिक जीवन में साप्रदायिक सद्भाव व तालमेल बढ़ाने के प्रयासों में ईश्वर का सर्वाधिक बुलंद रूप उभरकर आता है। ईसा का कहना है 'धन्य हैं वे जो मेल कराते हैं! वे ईश्वर के पुत्र कहलायेंगे' (मत्ती 5.9,पृ.सं.6)। इसी बात को कैथलिक ईसाई समुदाय के पूर्व-प्रमुख स्वर्गीय पोप जोन 23 ने इन शब्दों में कहा, 'वी हैव टु लुक एट ह्वाट युनाइट्स पीपिल रादर दैन ह्वाट डिवाइड्स देम', अर्थात् एक-दूसरे से अलग करनेवाली बातों के बजाय आपस में जोड़नेवाली चीज़ों की तलाश की जानी चाहिये। पोप जोन पॉल ने धर्म की सटीक परिभाषा करते हुए इसी बात को आगे बढ़ाया और कहा, 'जो भलाई, तालमेल और शांति का स्रोत है, वही धर्म है'। केरल के दार्शनिक, अध्यात्मवादी और समाज-सुधारक श्री नारायण गुरु ने अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण को ज़ाहिर करते हुए कहा, 'एक धम, एक जाति और एक ईश्वर'। 'हमारा' का भाव समन्वय का केंद्रीय तत्व है। खंडित मानसिकता से ऊपर उठना होगा। संसार की भिन्न-भिन्न धर्म-परंपराएँ 'द्वीपों के समान' एक दूसरे से अलग होकर वजूद नहीं रख सकती हैं। वे 'समान्तर-रेखाओं के समान' खुदा की साधना में अकेले नहीं चल सकती हैं। 'इन्द्रधनुष' के विविध रंगों

के समान विभिन्न समुदायों को सम्मिलित रूप से रहना होगा। भिन्न-भिन्न मूल्यों के समन्वय से ही मानव-जीवन में समृद्धि और खूबसूरती आ सकती हैं। विविध धर्म-परंपराएँ एक दूसरे के लिये आइने के समान हैं। विविधता सब के लिये आत्म-निरीक्षण और समृद्धि का एक कुदरती इंतज़ाम है। आपसी संवाद में हर एक परंपरा को खुद को शुद्ध करने और समृद्ध करने का मौका हासिल होता है। दोनों में बदलाव इसका परिणाम है। 'साथ-साथ चलना' धर्म-परंपराओं के लिये दरकार है। उन्हें एक दूसरे के साथ मिलकर समाज को परिष्कृत करते हुए सृष्टिकर्ता ईश्वर की ओर एक सम्मिलित तीर्थ-यात्रा तय करनी होगी। ऐसे सामाजिक समन्वय में ईश्वर का जीवंत रूप निखरता और रौशनी फेरता रहेगा।

ईश्वर के रूप में 'गतिशीलता'

ईसाई जगत के मशहूर चिंतक केनेथ लीच का कहना है, 'ईश्वर हमेशा हम से आगे है'। खुदा की तलाश में जितना आगे बढ़ा जाय, लगता है कि खुदा उतना और उससे भी ज़्यादा आगे है। खुदा को सतत टटोला जाय, यही धर्म की प्रक्रिया है। इसका सीधा मतलब यह हुआ कि ईश्वर का रूप परिवर्तनशील है। उसका रूप बदलता रहता है। इससे यह अभिप्राय नहीं है कि ईश्वर का कोई स्थायी रूप नहीं है। ईश्वर का एक पहलू है जो इन्सान की सीमित बुद्धि वे हमेशा परे है। वह ईश्वर का स्थायी रूप है। इशारा इस बात की ओर है कि इन्सान के विकास के साथ ईश्वर की धारणा भी में भी तब्दीली आती रहती है। ईश्वर का परिवर्तनशील पहलू इंसान की जिंदगी के उतार-चढ़ाव के अनुसार और उसके मिज़ाज़ के अनुसार भी बदलता है। दूसरे इन्सानों के साथ उसके रिश्ते के रूप के अनुसार ईश्वर के साथ उसके रिश्ते का तरीका भी बदलता है। उसके ज्ञान और जीवन का अनुभव भी उसके मन में ईश्वर की धारणा के रूप को बदलता है। चलते-चलते उसके जोवन में ईश्वर-ज्ञान की गुणवत्ता भी बढ़ती है। जिंदगी के विकास का प्रमाण बेहतर ज्ञान को हासिल करना है। इस प्रकार इन्सान की आस्था परिष्कृत होती रहती है। बेहतर ईश्वर-चेतना से ही सामाजिक बदलाव और प्रगति मुमकिन है। बदलाव ही जीवन है। इस लिये, इन्सान के जीवन में ईश्वर की गतिशीलता भी जायज बात है। कविगुरु रवींद्र नाथ ठाकुर की मंशा थी कि वे ईश्वर को 'नित्य नये-नये रूपों में' देखे। खुदा का एक रूप नहीं होता; उसके अनगिनत रूप होते हैं। उसके नये-नये रूपों की तलाश ही धर्म की साधना है। नयेपन की यह चाह ही जीवन की जीवंतता की पहचान भी है। धर्म-साधना असल में एक ऐसा सफ़र है। नयी सोच होती रहे, नयी व्याख्या होती रहे, नयी पहल होती रहे और नयी दिशा की ओर ज़िंदगी चलती रहे, जिंदगी की रफ़्तार बनी रहे, इसी में धार्मिक यात्रा की सार्थकता है।

'ईसाई परंपरा में ईश्वर का स्वरूप'

ईसाई परंपरा में ईश्वर का स्वरूप समग्र और सर्वसमावेशक है। आस्था की ठोस बुनियाद पर रिश्ते के बहुविध आयामों को लेकर यह वैविध्यपूर्ण ही नहीं, व्यावहारिक और संपूर्ण भी है। फिर भी, विनम्र भाव से यह कहना उचित होगा कि ईश्वर का असली रूप अनुभवात्मक है तथा वह गतिशील और परिवर्तनशील है। ईश्वर-तलाश और साधना की तीर्थ-यात्रा निरंतर चलती रहेगी।

डॉ. एम. डी. थॉमस
संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)
ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)
बेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: https://twitter.com/mdthomas53
Facebook: https://www.facebook.com/mdthomas53
Academia.edu: https://independent.academia.edu/MDTHOMAS